सभी बच्चों को मिलें सीखने के समान अवसर

छोटे लाल तँवर

सीखने की असीम सम्भावना से लबरेज़ बच्चे जब स्कूल को पिटने और डरने वाली जगह के रूप में देखने लगते हैं, तब शिक्षक बच्चों के सीखने पर भरोसा करके, उनके प्रति स्नेह और विविधता के प्रति सम्मान जताकर, बच्चों में स्वामित्व और आत्मसम्मान का भाव जगाते हैं। यह काम चुनौती भरा है ज़रूर, लेकिन शिक्षकों की मानवीय-पेशेवर कोशिशें इसे सम्भव बनाती हैं।

चित्र 1: गोल घेरे में बैठाकर शिक्षक हर विद्यार्थी के हाव-भाव को देखते हैं और सबको सीखने का अवसर देते हैं

जब हम विद्यालय की शुरुआत कर रहे थे तो यह स्पष्टता बनाने की कोशिश की जा रही थी कि दाख़िले में हम किन बच्चों को प्राथमिकता देंगे। आपसी विमर्श के बाद समझ बनी कि हम शुरू में उन वंचित बच्चों को नामांकित करेंगे जो या तो स्कूल नहीं जा रहे हैं, या अपेक्षित ढंग से सीख नहीं पा रहे हैं। इस सिलसिले में हम बमोर गाँव के उच्च प्राथमिक स्कूल में गए क्योंकि वहाँ शिक्षकों को गाँव के शाला त्यागी बच्चों की जानकारी थी। उन्होंने हमें शाला त्यागी बच्चों की लिस्ट दी और उन बच्चों के नाम भी बताए जो उनके स्कूल में नामांकित थे, लेकिन कक्षा 4 और 5 में आने के बाद भी पढ़ने-लिखने की सामान्य दक्षताएँ हासिल नहीं कर पाए थे।

हमने इन बच्चों का नामांकन कक्षा 1 से 5 में उनकी उम्र के आधार पर किया। कक्षा 5 में 14 बच्चे नामांकित किए गए। इन में 70-80 प्रतिशत बच्चे ऐसे थे जिनको वर्ण और मात्राओं की समझ नहीं थी, या अर्थपूर्ण शब्द नहीं बना पाते थे। इन बच्चों में एक छात्रा थी जो स्कूल के नाम तक से डरती थी। स्कूल के बारे में उसकी छवि पिटने और प्रताड़ित होने वाली जगह के रूप में बन गई थी क्योंकि उसने स्कूल में दूसरे बच्चों को पिटते हुए देख लिया था, और ख़ुद भी शिक्षक द्वारा दी गई सज़ा का शिकार हो चुकी थी। जब हम गाँव में इस छात्रा को मिलने की कोशिश करते, छात्रा स्कूल वालों का नाम सुनकर ही भाग जाती थी। उसके अभिभावक कहते, "क्या करें? हम तो ख़ूब कहते हैं, यह स्कूल जाती ही नहीं है।" कई दिनों तक वह छात्रा हमसे मिलने की हिम्मत तक नहीं जुटा पाई। उसको स्कूल से डर लगता था।

इस प्रकार स्कूल की शुरुआत ऐसे 85 बच्चों से की गई जिनमें अलग-अलग उम्र के शाला त्यागी, विभिन्न अकादमिक स्तर के और अलग-अलग आर्थिक, सामाजिक पृष्ठभूमियों के बच्चे नामांकित थे। हमारे सामने चुनौती सिर्फ़ पठन-पाठन की न होकर इन सभी पृष्ठभूमि के बच्चों को समावेशित कर 'हम' की भावना जाग्रत करने और सँजोने की भी थी। अकसर स्कूल नामांकन में ही विभिन्न पृष्ठभूमियों के बच्चों को दाख़िला दिलाने

को ही समावेशन मान लेते हैं, लेकिन केवल नामांकन भर से समावेशन नहीं हो जाता। उसके लिए कक्षा-कक्षीय और विद्यालयी प्रक्रियाएँ ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती हैं।

विद्यालय में समावेशी माहौल बन पाए, इसके लिए हमने कुछ प्रभावी प्रयास किए। प्रवेश प्रक्रिया के दौरान ही हमने बच्चों के साथ खेल गतिविधियाँ कीं। इन गतिविधियों से उनके साथ जान-पहचान और परस्पर सहजता का माहौल बनने लगा। बच्चे हमारे साथ घुलने-मिलने लग गए थे। परिणाम यह हुआ कि विद्यालय में न केवल नामांकन बढ़ा, बल्कि वह छात्रा भी स्कूल आने को तैयार हो गई जो विद्यालय के नाम तक से डरती थी। इसी तरह के स्कूली डर से भरे दूसरे बच्चे भी विद्यालय आने लगे।

हमने इन बच्चों के साथ काम की शुरुआत इसी विश्वास से की कि हर बच्चा सीखने की असीम सम्भावनाएँ लेकर आता है, और ये सभी बच्चे सीख सकते हैं। हमारे मन में इस बात की स्पष्टता थी कि बच्चे बेहतर ढंग से तब सीखते हैं जब वह सुरक्षित महसूस करें, उन्हें महत्त्व दिया जाए, उनसे प्यार से पेश आया जाए, और वे ख़ुद पर भरोसा करें। इसी समझ के साथ इन बच्चों के साथ काम की शुरुआत की गई। समावेशन के बहुत सारे आयाम हैं जिन पर सोचने और काम करने की निहायत ज़रूरत होती है। मसलन, बच्चे किस सामाजिक, भाषाई और आर्थिक परिवेश से आ रहे हैं, स्कूल इन बच्चों को किस तरह से देखता है, आदि। हमारी कल्पना के उलट, बच्चों की अवलोकन, एहसास करने, और माहौल भाँपने की क्षमता बहुत तेज़ होती है। वह बड़ों के हाव-भाव से बेहद जल्दी अन्दाज़ा लगा लेते हैं कि बड़े उनके बारे में किस तरह की राय रखते हैं।

> **हर बच्चा अपने-आप में विशेष है, और जब उसे उसके सन्दर्भों की चीज़ों से जोड़कर सिखाया जाता है तो उसका सीखना प्रभावी हो जाता है**

शिक्षक समूह में यह स्पष्टता थी कि सभी बच्चों को बराबरी का एहसास मिले, और उनके मन में किसी भी तरह की ऊँच-नीच की आशंका न रहे। हमने यह क़वायद भी की कि स्कूल की प्रक्रियाओं में सब बच्चों को कैसे शामिल किया जाए, क्योंकि आमतौर पर बच्चों को हर जगह सिर्फ़ निर्देश ही दिए जाते हैं। बड़ों को लगता ही नहीं है कि 8-10 साल का कोई बच्चा अपने विवेक से कुछ कर सकता है। दूसरा पहलू यह है कि स्कूल की व्यवस्था में बच्चे की परिवेशीय समझ को पूरी तरह नज़रन्दाज़ किया जाता है। 6 साल का बच्चा जो भाषा और परिवेश की समझ लेकर आया है, यदि उसी के अनुरूप उसके सीखने की योजना बनाई जाए तो नतीजे अलग आते हैं। बच्चों के साथ जुड़ाव बनाने में हमने इन बच्चों की स्थानीय भाषा, उनके लोकगीत और लोककथाओं का समावेश करने की कोशिश की। बच्चों को कुछ ऐसे बालगीतों का अनुभव दिया गया जिनका सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में उनके परिवेशीय अनुभवों से जुड़ता था। जैसे– "आरे बादल कारे बादल आओ ज़रा झूम के, अपने संग ठण्डी हवा लाओ ज़रा झूम के", "बंजारा नमक लाया ऊँट गाड़ी में", आदि। यह ऐसे बालगीत हैं जो उन बच्चों के जीवन से गहराई से जुड़े हैं, और उनका जीवन कहीं-न-कहीं इन गीतों में आए पदबन्धों से प्रभावित होता दिखता है।

इसका नतीजा यह हुआ कि वह सभी बच्चे, जिनके मन में यह बात पैठ चुकी थी कि वह पढ़ना-लिखना नहीं सीख सकते, धीरे-धीरे सुनी हुई कहानियों और कविताओं में आनन्द लेने लगे। शुरू में यह बच्चे समूह में कविता सुनाते थे। जब बच्चों का यह डर दूर हो गया कि हमारी प्रस्तुति पर कोई हँसेगा नहीं, और हमें उत्साहित ही किया जाएगा तो उनका हौसला बढ़ने लगा। फिर यह बच्चे छोटी-छोटी कहानियाँ व कविताएँ सुबह की सभा में अकेले भी प्रस्तुत करने लगे। इससे उम्र में बड़े और छोटे, पढ़ाई में अगड़े और पिछड़े, सभी सहज महसूस करने लगे।

नामांकन के बाद समावेशन केवल शिक्षण प्रक्रियाओं को समावेशी और सहज बनाने भर से ही नहीं होता, बल्कि दूसरी विद्यालयी प्रक्रियाओं को भी समावेशी होना ज़रूरी है। स्कूल टीम को भी ख़ुद की समझ और धारणाओं पर काम करने की लगातार ज़रूरत महसूस होती रही। विद्यालयी प्रक्रियाओं को समावेशी बनाने लिए विद्यालय प्रबन्धन में बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए अलग-अलग समितियाँ बनाई गईं। इनमें से कुछ समितियाँ इस प्रकार थीं– मिड डे मील समिति, सुरक्षा समिति, खेल समिति, पुस्तकालय समिति, मॉर्निंग असेंबली समिति, आदि। इनमें सभी बच्चों को प्रतिभाग करने के अवसर थे और हर कक्षा, उम्र और पृष्ठभूमि के बच्चों का समावेश था। बच्चों के साथ शिक्षकों को भी सभी समितियों से जुड़ना ज़रूरी था। जब बच्चों को ज़िम्मेदारी निभाने के साथ-साथ ख़ुद की अहमियत का भी भान होने लगा तो उनके मन में चीज़ों और प्रक्रियाओं के प्रति स्वामित्व का भाव आने लगा। वह ज़्यादा आत्मविश्वास से अपनी भूमिका निभाने लगे। उनका यह आत्मविश्वास कक्षा में भी प्रतिबिम्बित होने लगा। इस तरह के समावेशन ने बच्चों के बीच एक 'हम' की भावना जाग्रत की, और चीज़ों को कैसे क़रीने से किया जाता है, इसका भान भी दिया।

इस सबके साथ हमने ये समझने की कोशिश भी की कि बच्चों की रुचि के और कौन-कौन से ऐसे क्षेत्र हैं जिनके माध्यम से वे ख़ुद को ज़्यादा सृजनात्मक ढंग से व्यक्त कर पाते हैं। कुछ बच्चे बोलकर अपनी बात कहना चाहते हैं, और कुछ चित्रों के माध्यम से अपनी बात व्यक्त करना चाहते हैं। इनमें बालगीत गुनगुनाना, हाव-भाव के साथ इन्हें प्रस्तुत करना, और चित्रात्मक ढंग से अभिव्यक्ति देना प्रमुख हैं। चित्रों के माध्यम से ख़ुद को व्यक्त करने के अनुभव कला शिक्षक द्वारा दिए गए। इनमें बच्चों ने सुनी या पढ़ी हुई कविता-कहानियों को चित्रात्मक दृश्यों के माध्यम से बताने का प्रयास किया। यह तरीक़ा बच्चों को काफ़ी आकर्षक लगा। इस विधा के साथ हर बच्चा जुड़ना चाहता है, यदि उन्हें अपनी दुनिया के अनुभवों को अभिव्यक्त करने की आज़ादी मिले। यह तभी सम्भव है जब शिक्षक विषयों के अपने दायरों से बाहर आकर सीखने के सभी विषय क्षेत्रों के बीच सम्बन्ध देख पाता है। ऐसा करते

चित्र 2 : रंगों से चित्रकारी की तैयारी करते विद्यार्थी

हुए, शिक्षक बच्चों के सीखने की सम्भावनाओं के रास्ते खोलता जाता है जिससे सीखने की प्रक्रिया आसान व जीवन्त बन जाती है। इस प्रकार की शिक्षण गतिविधियाँ सभी बच्चों को प्रतिभाग करने के अवसर देने के साथ-साथ उनकी वैयक्तिक प्रतिभाओं को पहचानने और निखारने के अवसर देती हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे ने दिवाली में अपने आस-पास के दृश्यों को उकेरते हुए उनका वैसा ही वर्णन किया है जैसा उसने देखा व अनुभव किया। जब शिक्षक बच्चों को अनुभव साझा करने के लिए उनकी रुचि के अनुसार माध्यम को चुनने की आज़ादी देते हैं तो चित्र बनाना, बनाए चित्रों पर बात करना और उस बात को भाषाई प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करना, उसी तरह आनन्द के स्रोत बन जाते हैं।

इन उदाहरणों ने इस बात को ताक़त दी कि हर बच्चा अपने-आप में विशेष है, और जब उसे उसके सन्दर्भों की चीज़ों से जोड़कर सिखाया जाता है तो सीखना प्रभावी हो जाता है। शिक्षक को प्रत्येक बच्चे की पृष्ठभूमि समझने का मौक़ा मिलता है। इस पूरी प्रक्रिया का एक मूल मंत्र यह है कि किसी एक बच्चे की दूसरे बच्चे से तुलना नहीं की जानी चाहिए। हर बच्चे के सीखने का तरीक़ा दूसरों से अलग होता है, फिर क्यों हम हर दिन बच्चों को तुलना की चक्की में बेरहमी से पीसते हैं, और ऐसा करते हुए उनमें अयोग्यता का भाव भरते हैं! ऐसा करने से उनका सीखने से भरोसा ही उठ जाता है, और जो बच्चे पढ़ाई के जिन क्षेत्रों में कमज़ोर होते हैं वह उससे दूर होने लगते हैं। साथ ही, जिन बच्चों के अनुभवों को कक्षा में स्थान नहीं मिलता है वह भी बहिष्कृत जैसा महसूस करने लगते हैं।

सीखने-सिखाने की यह यात्रा बच्चों और शिक्षकों के लिए मज़ेदार व उत्साहित करने वाली थी। बच्चे स्कूल में ख़ुशी-ख़ुशी आ रहे थे, और उनका सीखना हो रहा था। क़रीब 4-5 महीने के मिले-जुले प्रयासों से स्कूल से डरने वाले और स्कूल की अपेक्षाओं की तुलना में बहुत कम सीखने वाले 8-10 बच्चे कहानी-कविताएँ पढ़ने लगे, पढ़े हुए टेक्स्ट पर बात करने लगे, और अलग-अलग माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करने लगे थे। अब इन बच्चों को भाषा की सभी दक्षताओं पर समान रूप में काम करने का मौक़ा मिल पा रहा था। अलग-अलग उम्र के बीच उनमें कोई अलगाव नहीं दिख रहा था, और सीखने के क्रम में जो बच्चे विभिन्न स्तरों पर थे उनमें भी अलगाव न होकर सहजता का भाव था। इससे माहौल ज़्यादा सहज हो गया, और अब बच्चों में कम-से-कम विद्यालय की चहारदीवारी में अगड़े-पिछड़े और ऊँच-नीच के भाव प्रदर्शित होते हुए नहीं दिखते थे। बच्चों के लिए यह एक बड़ी उपलब्धि का एहसास था, और हमारे लिए जोश भरने वाली अनुभूति कि बच्चे माक़ूल माहौल और प्रक्रिया मिलने पर अच्छी तरह पढ़ना-लिखना सीख सकते हैं, और बेहतर मानवीय मूल्यों की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

ऊपर बताई गई कुछ प्रक्रियाओं से हमने सीखा कि बच्चों के सीखने में उनकी भाषाई, सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि को समावेशित करने से कक्षा संसाधन युक्त हो सकती है। उसे एक बड़े अवसर में तब्दील किया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि परिवेश विशेष से आने वाले बच्चों के साथ काम करने वाले शिक्षक समूह का इन पक्षों के प्रति नज़रिया कैसा है। शिक्षक समूह का बच्चों की विविधता के प्रति दृष्टिकोण, अपने व्यवहार और कक्षा प्रक्रिया में ज़रूरी बदलाव कर पाना यह तय करता है कि वह इसे संसाधन के तौर पर देख रहे हैं या बाधा की तरह। यदि इस विविधता को बाधा की तरह न देखा जाए तो वह संसाधन बन जाती है, और बच्चों का स्कूल द्वारा अपेक्षित उद्देश्यों को प्राप्त करना सम्भव हो पाता है। यह ज़रूर है कि अगर शिक्षकों के पास यह नज़र होती है तो वह समाधान भी खोज ही लेते हैं, और अगर दृष्टि नहीं होती है तो संसाधन भी बाधा लग सकते हैं।

छोटे लाल तँवर ने राजस्थान की लोक जुम्बिश परियोजना में 3 साल काम किया। आपने बोध शिक्षा समिति में 12 साल शिक्षकों के साथ अकादमिक समर्थन का कार्य किया। वर्तमान में, आप अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन जयपुर ज़िले के चाकसू ब्लॉक में, ब्लॉक समन्वयक की भूमिका में कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : chhote.lal@azimpremjifoundation.org